ब्रह्मचर्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता

ब्रह्मचर्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता

संसार में प्रत्येक व्यक्ति आरोग्य और दीर्घ जीवन की इच्छा रखता है। चाहे किसी के पास कितना ही सांसारिक वैभव और सुख-सामग्रियाँ क्यों न हों, पर यदि वह स्वस्थ नहीं है, तो उसके लिए वे सब साधन-सामग्री व्यर्थ ही हैं। हम अपने ही युग के रॉकफेलर जैसे व्यक्तियों को जानते हैं, जो संसार के सबसे बड़े धनी कहलाते हुए भी अस्वस्थता के कारण दो रोटी खाने को भी तरसते थे। इसलिए एक विद्वान के इस कथन को सत्य ही मानना चाहिए, "धन संसार में बहुत बड़ी चीज नहीं है, स्वास्थ्य का महत्त्व उससे कहीं ज्यादा है।"

आरोग्यशास्त्र के आचार्यों ने स्वास्थ्य-साधन की मूल चार बातें बतलाई हैं—आहार, श्रम, विश्राम और संयम। आहार द्वारा प्राणियों की देह का निर्माण और पोषण होता है। अतः उसका उपयुक्त होना सबसे पहली बात है। दूसरा स्थान श्रम का है, क्योंकि उसके बिना न तो आहार प्राप्त होता है और न वह खाने के पश्चात देह में आत्मसात् हो सकता है। विश्राम भी स्वास्थ्य-रक्षा का आवश्यक अंग है, क्योंकि उसके द्वारा शक्ति संग्रह किए बिना कोई लगातार श्रम करते रहने में समर्थ नहीं हो सकता। चौथा संयम है, जो अन्य प्राणियों में तो प्राकृतिक रूप से पाया जाता है, पर अपनी बुद्धि द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त कर लेने का अभिमान रखने वाले मनुष्य के लिए जिसके उपदेश की नितांत आवश्यकता है।

संयम की आवश्यकता यद्यपि आहार, श्रम, विश्राम आदि सभी विषयों में है, क्योंकि इनका अनियमित रूप से व्यवहार करने का परिणाम हमेशा दुःखदायक ही होता है, पर यहाँ उसका तात्पर्य विशेष रूप से भोगों की सीमा और मर्यादा का पालन करना है। सांसारिक भोगों में एक ऐसी मोहक और आकर्षण शक्ति है कि वे निरंतर मनुष्य को अपनी ओर खींचते रहते हैं और जितने ही अधिक वे प्राप्त होते जाते हैं, मनुष्य की प्रवृत्ति उनकी तरफ उतनी ही अधिक बढ़ती जाती है।

इस प्रकार भोग की अधिकता से मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक—तीनों प्रकार की शक्तियों का नाश होता है, क्योंकि भोग के परिणामस्वरूप शरीर के सार रूप वीर्य का अपव्यय होता है, जिसका कुप्रभाव समस्त शरीर पर पड़ता है और भीतरी तथा बाहरी सभी अंगों की शक्ति घट जाती है। यह दूसरी बात है कि चढ़ती हुई युवावस्था में शारीरिक तत्त्वों की वृद्धि होते रहने के कारण कोई इसे अनुभव न करे अथवा मदांध होकर हठधर्मी से सत्य बात को भी न माने, पर इसमें संदेह नहीं कि वीर्य का उचित समय से पहले दुरुपयोग होने लगना अथवा गृहस्थ जीवन में भी उसकी अधिकता पतन का कारण बनती है।

वर्तमान समय में शिक्षित और अशिक्षित दोनों प्रकार के व्यक्तियों की गति इस संबंध में विपरीत दिखाई पड़ती है। अशिक्षित और अल्प बुद्धि वाले व्यक्तियों की बात तो छोड़ दीजिए, क्योंकि वे विवेकशक्ति से हीन होते हैं और जैसी लकीर चली आई है, उसी पर चल सकने लायक शक्ति और योग्यता रखते हैं, पर आजकल के शिक्षित भी नई रोशनी से चकाचौंध होकर अपने प्राचीन आदर्श से दूर हटते जाते हैं और पश्चिमी देशों की ऊपरी चमक-दमक पर लट्टू होकर संयम तथा चरित्र की शुद्धता के महत्त्व को भूलते जाते हैं। वे अब यह कहने लगे हैं कि ब्रह्मचर्य की शिक्षा और आदर्श की बातें केवल कहने-सुनने की हैं, व्यवहार में ऐसे ब्रह्मचर्य का पालन

कठिन ही नहीं, असंभव है। खाने, पीने, निद्रा और मल-मूत्र त्याग की तरह संभोगवृत्ति भी स्वाभाविक है। इस पर किसी प्रकार का अंकुश या बंधन लगाना व्यर्थ है।

इंद्रिय-संयम की महिमा

जो नवयुवक विदेशी कामशास्त्र की पुस्तकें पढ़कर या अनुभवहीन लोगों की दलीलें सुनकर स्वयं भी ब्रह्मचर्य को निरर्थक कहने लगते हैं, वे चारों तरफ निगाह दौड़ाकर अपने साथियों की दशा देखें। उनमें से हजारों जवानी में ही शक्तिहीनता का अनुभव करके 'ताकत की दवाएँ या टॉनिक आदि ढूँढ़ने लगते हैं। हजारों प्रमेह का शिकार होकर पीले शरीर और निस्तेज चेहरे को लिए फिरते हैं और हजारों ऐसे भी हैं, जो सुजाक और गरमी जैसे भयंकर रोगों के शिकार बनकर अपने जीवन को बरबाद कर लेते हैं। यह हो सकता है कि इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी जैसे देशों के लोग ठंढी आवोहवा के कारण तथा मांस-मदिरा आदि उत्तेजक आहार की अधिकता से अधिक संभोग के दुष्परिणामों को इतना शीघ्र अनुभव न करते हों, पर भारत जैसे गरम आवोहवा वाले तथा शाकाहारी देश के निवासी यदि उनकी नकल करेंगे, तो उन्हें अपनी गलती का प्रतिफल तुरंत ही सहन करना होगा।'

भारत के प्राचीन मनीषियों ने इस तथ्य को उसी समय भली प्रकार समझ लिया था और इसीलिए बालकों के लिए छोटी आयु से ही किसी सद्‌गुरु के निकट रहकर युवावस्था तक ब्रह्मचर्य-पालन का विधान बनाया था। उसी युग में वेदों ने स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया था—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।

'ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य स्वास्थ्य और शक्ति ही प्राप्त नहीं करता, वरन वह मृत्यु को भी जीत सकता है।' इसका यह आशय नहीं कि वह कभी मरेगा ही नहीं, पर वह अकाल-मृत्यु को हटाकर दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है और शक्ति, साहस और

वीरता का ऐसा उदाहरण उपस्थित कर सकता है, जिसे देखकर संसार चकित रह जाए। हनुमान, लक्ष्मण, भीष्म, शंकराचार्य आदि महापुरुष इसके उदाहरण हो चुके हैं। हम भी यदि शास्त्रीय विधान के अनुसार आचरण रखते हुए सच्चे अर्थों में ब्रह्मचर्य का पालन करें, तो वर्तमान की अपेक्षा बहुत अधिक महत्त्व के कार्यों का संपादन और संचालन करके दिखा सकते हैं।

वर्तमान समय में भी ब्रह्मचर्य की महत्ता के कुछ उदाहरण मिलते रहते हैं। इस युग के सर्वश्रेष्ठ मनुष्य माने जाने वाले और 'महामानव' की पदवी के सच्चे अधिकारी महात्मा गांधी ने सपत्नीक होते हुए भी ३७ वर्ष की आयु में पूर्ण ब्रह्मचर्य का व्रत ग्रहण कर लिया था और ४० वर्ष से अधिक समय तक उसका दृढ़तापूर्वक पालन किया। इस ब्रह्मचर्य से प्राप्त शक्ति का ही प्रताप था कि वे संसार में शक्तिशाली माने जाने वाले तथा सर्वसाधनसंपन्न अँगरेजी साम्राज्य का आत्मबल से मुकाबला करके भारत को स्वतंत्र करा सके। इस ब्रह्मचर्य व्रत को उन्होंने किस प्रकार ग्रहण किया और कैसे प्रयत्नपूर्वक निभाया इस संबंध में वे स्वयं लिखते हैं—

"खूब चर्चा और दृढ़ विचार करने के बाद १९०६ (३७ वर्ष की आयु) में मैंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। व्रत लेते हुए मुझे बड़ा कठिन मालूम हुआ। विकारों को कैसे दबा सकूँगा? पत्नी के साथ रहते हुए विकारों से अलिप्त रहना भी अजीब बात मालूम होती थी। फिर भी मैं देख रहा था कि यह मेरा स्पष्ट कर्त्तव्य है। मेरी नीयत साफ थी। यह सोचकर कि ईश्वर शक्ति और सहायता देगा, मैं कूद पड़ा। अब बीस वर्ष बाद उस व्रत को स्मरण करते हुए मुझे सानंद आश्चर्य होता है। संयम करने का भाव तो सन् १९०१ से ही प्रबल था और उसका पालन भी कर रहा था, परंतु जो स्वतंत्रता और आनंद मैं अब पाने लगा, वह मुझे याद नहीं कि पहले कभी मिला हो। ब्रह्मचर्य के सोलहों आने पालन का अर्थ है—ब्रह्मदर्शन। यह ज्ञान मुझे शास्त्रों के द्वारा न हुआ था। यह अर्थ

मेरे सामने धीरे-धीरे अनुभव सिद्ध होता गया। इसके लिए मन, वचन और काया से समस्त इंद्रियों का संयम रखना अनिवार्य है। इस ब्रह्मचर्य में त्याग की बड़ी आवश्यकता है। प्रयत्नशील ब्रह्मचारी नित्य अपनी त्रुटियों का दर्शन करेगा, तो अपने हृदय के कोने-कोने में छिपे विकारों को पहचान लेगा और उन्हें निकाल बाहर करने का प्रयत्न करेगा।''

हिंदू धर्म की अनुपम निधि

संत विनोबा का जीवन भी इस दृष्टि से आदर्श है। वे छोटी अवस्था से ही बाल ब्रह्मचारी रहे और सदा पूर्ण संयम का जीवन बिताकर अपनी शक्ति देश और जनता की सेवा में लगाते रहे हैं। इसी महाव्रत का प्रभाव है कि सत्तर वर्ष की आयु में, जबकि हमारे अधिकांश देशवासी या तो मर जाते हैं या निष्क्रिय होकर बैठ जाते हैं, उन्होंने हजारों मील की पैदल यात्रा की और 'भूदान' जैसे अद्वितीय आंदोलन को सफल बनाकर दिखा दिया। ब्रह्मचर्य की महत्ता का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

''हिंदू धर्म ने विशिष्ट आचार के लिए एक ऐसा शब्द बनाया है, जो अन्य दूसरे धर्मों में नहीं दीख पड़ता। वह है— 'ब्रह्मचर्य'। ब्रह्मचर्याश्रम की व्यवस्था हिंदू धर्म की विशेषता है। अँगरेजी में ब्रह्मचर्य के लिए कोई शब्द नहीं है। लेकिन उस भाषा में कोई शब्द नहीं है, तो इसका यह मतलब नहीं कि उन लोगों में कोई संयमी हुआ ही नहीं। ईसामसीह स्वयं ब्रह्मचारी थे। वैसे वहाँ भी अच्छे-अच्छे लोग संयमी जीवन बिताते हैं, लेकिन ब्रह्मचर्य आश्रम की वह कल्पना उन लोगों में नहीं है, जो हिंदू धर्म में पाई जाती है। ब्रह्मचर्याश्रम का अर्थ यह है कि मनुष्य जीवन को आरंभ से ही अच्छी खाद मिले। जैसे वृक्ष को, जब वह छोटा रहता है, तब खाद की अधिक आवश्यकता होती है; बड़ा हो जाने के बाद खाद देने से जितना लाभ है, उससे अधिक लाभ जब वह छोटा रहता है, तब देने से होता है। यही मनुष्य

जीवन का हाल है। यह खाद अगर अंत तक मिलता रहे तो, अच्छा ही है। लेकिन बराबर नहीं मिले तो कम-से-कम बचपन में तो बहुत आवश्यक है। जैसे हम बच्चों को दूध देते हैं, उन्हें अंत तक मिलता रहे तो अच्छा ही है, लेकिन बराबर न मिले तो कम-से-कम बचपन में तो मिलना ही चाहिए। शरीर की तरह आत्मा और बुद्धि को भी जीवन के आरंभ में अच्छी खुराक मिलनी चाहिए। इसीलिए ब्रह्मचर्य आश्रम की योजना बनाई गई है।''

'विषय-वासना मत रखो'—यह ब्रह्मचर्य का 'निगेटिव' या अभावात्मक रूप हुआ। सब इंद्रियों की शक्ति आत्मा की सेवा में खरच करो—यह उसका 'पोजीटिव' या भावनात्मक रूप है। 'ब्रह्म' यानी कोई बृहद कल्पना। अगर मैं चाहता हूँ कि इस छोटी-सी देह के सहारे दुनिया की सेवा करूँ, उसके ही काम में अपनी सब शक्ति खरच करूँ, तो यह एक विशाल कल्पना हुई। विशाल कल्पना रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन हो जाता है। मैंने अध्ययन के लिए ब्रह्मचर्य रखा। उसके बाद देश की सेवा करता रहा। वहाँ भी इंद्रिय संयम की आवश्यकता थी। लेकिन बचपन में इंद्रियनिग्रह का अभ्यास हो चुका था, इसलिए बाद में वह कठिन मालूम नहीं हुआ। मैं नहीं कहता कि ब्रह्मचर्य आसान चीज है। हाँ, विशाल कल्पना मन में रखोगे तो आसान हो जाएगा। ऊँचा आदर्श सामने रखना और उसके लिए संयमी जीवन का आचरण करना, इसको मैं ब्रह्मचर्य कहता हूँ।''

ब्रह्मचर्य की विश्वव्यापी महिमा

यद्यपि सृष्टि-कर्म को स्थिर रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने गृहस्थ आश्रम और दांपत्य जीवन की आवश्यकता भी स्वीकार की है, पर उसमें भी संयम का पालन अनिवार्य माना है। धर्म-कर्त्तव्य के रूप में संतानोत्पत्ति और बात है और कामुकता के फेर में पड़कर अंधाधुंध वीर्य-नाश करना बिलकुल भिन्न है। इस प्रकार

के आचरण को संसार के सब विद्वान और विचारकों ने गर्हित तथा मानव जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करने वाला माना है।

हिंदू धर्म के आदि ग्रंथ वेद-भगवान का कथन है—"वीर्य रक्षा करने से अकाल मृत्यु नहीं होती, जो मनुष्य शरीर में अनुपम वीर्य का संचय करता है, वह दीर्घजीवी होता है।"

आयुर्वेद के आदि ग्रंथ 'चरक-संहिता' में ब्रह्मचर्य को सांसारिक सुख का साधन ही नहीं, मोक्षदाता भी बतलाया है—

सतामुपासनं सम्यगसतां परिवर्जनम्।
ब्रह्मचर्योपवासश्च नियमाश्च पृथग्विधा:॥

—दू.भा.-१४३

"सज्जनों की सेवा, दुर्जनों का त्याग, ब्रह्मचर्य, उपवास, धर्मशास्त्र के नियमों का ज्ञान और अभ्यास आत्मकल्याण का मार्ग है।"

अब से ढाई हजार वर्ष पहले भगवान बद्ध ने घोषित किया था—"भोग और रोग साथी हैं और ब्रह्मचर्य आरोग्य का मूल है।"

श्री गुरु गोविंदसिंह ने कहा है—"इंद्रिय-संयम करो, ब्रह्मचर्य पालो, इससे तुम बलवान और वीर्यवान बनोगे।"

आयुर्वेद के आचार्य वाग्भट्ट का कथन है—"संसार में जितना सुख है, वह आयु के अधीन और आयु ब्रह्मचर्य के अधीन है।"

'हठयोग प्रदीपिका' में लिखा है—"मनुष्य जब ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) रहता है तब तक अकाल-मृत्यु का भय नहीं होता।"

'छांदोग्योपनिषद्' में लिखा है—"एक तरफ चारों वेदों का उपदेश और दूसरी तरफ ब्रह्मचर्य, यदि दोनों को तौला जाए तो ब्रह्मचर्य का पलड़ा वेदों के उपदेश के पलड़े के बराबर रहता है।"

'योगतत्त्वोपनिषद्' में कहा है—"जब तक वीर्य स्थिर रहता है तब तक मनुष्य को काल का भी भय नहीं रहता।"

भीष्म पितामह का कथन है—"तीनों लोक के साम्राज्य का त्याग करना, स्वर्ग का अधिकार छोड़ देना, इससे भी उत्तम कोई वस्तु हो तो उसको भी छोड़ देना, परंतु ब्रह्मचर्य को भंग न करना।"

भगवान धन्वंतरि ने उपदेश दिया था—"जो शांति-कांति, स्मृति, ज्ञान, आरोग्य और उत्तम संतति चाहता हो, उसे संसार के सर्वोत्तम धर्म ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।"

इस प्रकार वेदों से लेकर मध्यकाल तक के समस्त धर्म-ग्रंथों ने ब्रह्मचर्य से होने वाले अपार लाभों और उसे नष्ट करने के दुष्परिणामों का स्पष्ट रूप से वर्णन किया है और लोगों को उपदेश दिया है कि यदि वे अपने लौकिक और पारलौकिक जीवन को सार्थक बनाना चाहते हैं, तो ब्रह्मचर्य का अवश्य पालन करें। आयुर्वेदशास्त्र के महान आचार्यों ने भी सब श्रेणियों के मनुष्यों को चेतावनी दी है कि यदि वे अपने स्वास्थ्य और आरोग्य को स्थिर रखते हुए सुखी जीवन व्यतीत करने के इच्छुक हैं, तो प्रयत्नपूर्वक वीर्य रक्षा करें। समस्त शास्त्रों के साररूप 'भगवद् गीता' ग्रंथ में तो अनुचित विषय-वासना को नाश का मूल कारण बताया है। दूसरे अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

ध्यायतो विषयानुन्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृति-भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धि नाशात्प्रणश्यति॥

"जो मनुष्य मन से विषयों का चिंतन करता रहता है, उसकी उनमें आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से उन विषयों की पूर्ति की कामना होने लगती है और उस कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध होता है। क्रोध से मूढ़भाव उत्पन्न होता है, मूढ़ता से स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है। इससे बुद्धि अर्थात ज्ञानशक्ति का नाश होता है और बुद्धिनाश होने से वह व्यक्ति ही नष्ट हो जाता है।"

पाँचवें अध्याय में इस बात को और भी स्पष्ट करते हुए कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनयः एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

"यह जो इंद्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप प्रतीत होते हैं, तो भी वास्तव में वे दुःख के ही हेतु हैं और नाशवान भी हैं, इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति उनमें आसक्त और लिप्त नहीं होते।"

आगे चलकर गीताकार ने ब्रह्मचर्य को बहुत बड़ा व्रत और तप बतलाया है—

देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

—१७-१४

"देवता, द्विज, गुरु, ज्ञानीजनों का सत्कार, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शारीरिक तप कहा जाता है।"

हमारे धर्मशास्त्रों में शरीर को भगवान का मंदिर माना गया है, जिसको पवित्र और शुद्ध रखना हमारा परम कर्त्तव्य है। इसका मुख्य साधन ब्रह्मचर्य का पालन ही है।

आधुनिक विद्वानों द्वारा समर्थन

ब्रह्मचर्य की रक्षा और विकास का नियम ऐसा शाश्वत है कि प्राचीन ही नहीं अर्वाचीन मनीषियों ने भी उसका पूर्णतः समर्थन किया है और उसके लाभों को बतलाकर ठीक ढंग से पालन करने पर जोर दिया है। आत्मलीन स्वामी रामतीर्थ का उपदेश इस संबंध में बड़ा प्रभावशाली है—

"जैसे दीपक का तेल बत्ती के द्वारा ऊपर चढ़कर प्रकाश के रूप में परिणत होता है, वैसे ही ब्रह्मचारी के अंदर का वीर्य सुषुम्ना नाड़ी द्वारा प्राण बनकर ऊपर चढ़ता हुआ ज्ञान-दीप्ति में परिणत हो जाता है। दुनिया के विचारों को बदलने वाला समर्थ विद्वान हर्बर्ट स्पेंसर और स्वीडन वर्ग अखंड ब्रह्मचारी थे। दुनिया का सबसे बड़ा तत्त्वज्ञानी 'केंट' भी ब्रह्मचर्य के प्रताप से दीर्घायु हुआ था।"

महायोगी अरविंद घोष ने कहा है—"रेतस् (वीर्य) का जो तत्त्व रति करने के काम में लगता है, जितेंद्रिय होने से वह तत्त्व प्राण, मन और शरीर की शक्तियों को पोषण देने वाले एक महत्त्व के दूसरे तत्त्व में बदल जाता है। इस तरह आर्यों का रेतस् का ओजस् में रूपांतर होने के फलस्वरूप उसकी ऊर्ध्वगति करने का आदर्श सर्वोच्च है।"

सुप्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक साधु टी. एल. वास्वानी लिखते हैं—"ब्रह्मचर्य का मार्ग स्वर्ग का मार्ग है। स्वर्ग का राज्य ब्रह्मचारियों के लिए है। उसके द्वार पर प्रदीप्त अक्षरों में लिखा है—जो शक्तिहीन हों, भीतर न आएँ।"

स्वामी विद्यानंद का कथन है—"ब्रह्मचर्य से परोपकार की वृत्ति जाग्रत होती है और परोपकार की वृत्ति के बिना किसी को मोक्ष मिलना संभव नहीं है।"

स्वामी शिवानंद की सम्मति है—"अगर आप ब्रह्मचर्य पालेंगे तो आप में अतुल बल आएगा।"

श्री किशोरीलाल मशरूवाला ने लिखा है—"ब्रह्मचर्य का अर्थ है ईश्वर के मार्ग पर चर्या (चलना)। सब शक्तियों का ईश्वर के मार्ग में उपयोग करना ही ब्रह्मचर्य है।"

स्वामी अभयानंद ने कहा था—"अगर आपको ब्रह्मचर्य रूपी शक्ति प्राप्त हो जाए तो ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो आपके हाथ में नहीं आ सकती।"

प्रो० कृष्णराव ने कहा है—"अचिंत्य और अद्भुत पराक्रम करने के लिए तमाम अनुपम, मानसिक तथा शारीरिक शक्तियाँ, प्रशंसनीय सद्गुण और दीर्घायु केवल ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही प्राप्त कर सकते हैं।"

जैसा विनोबा भावे ने कहा है, यद्यपि विदेशों में ब्रह्मचर्य को धार्मिक रूप नहीं दिया गया है तो भी वहाँ संयमी जीवन व्यतीत करने वालों का सर्वथा अभाव नहीं है। वहाँ के विद्वानों ने भी

शारीरिक दृष्टि से ब्रह्मचर्य के महत्त्व को स्वीकार किया है और उसकी बड़ी प्रशंसा की है। प्रसिद्ध जीवशास्त्री डॉ. क्राउन एम० डी० ने लिखा है—

"ब्रह्मचारी यह नहीं जानता कि व्याधिग्रस्त दिन कैसा होता है। उसकी पाचन शक्ति सदा नियमित रहती है। उसकी वृद्धावस्था में भी बाल्यावस्था जैसा ही आनंद आता है।"

डॉ० लेटशन एम० डी० ने कहा है—"प्रजोत्पादक तत्त्व—(वीर्य) में जीवनीशक्ति का आश्चर्यकारक समूह रहता है। उसकी रक्षा करते रहने से शरीर क्षीण नहीं होता। जब इस तथ्य का शरीर में शोषण होता है तब उसकी जीवनीशक्ति में वृद्धि होकर स्वास्थ्य उन्नत होता है, आँखें तेजस्वी होती हैं, चाल स्थिति स्थापक बनती है, शरीर सदा जवान दिखाई देता है।"

अमेरिका के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० बेनीडिक्ट लुस्टा का कथन है—"जितने अंशों तक जो मनुष्य ब्रह्मचर्य की विशेष रूप से रक्षा करता है, उतने अंश तक वह मनुष्य विशेष महत्त्व का कार्य कर सकता है।"

प्रो० रौवसन ने सम्मति दी है—"ब्रह्मचारी की बुद्धि कुशाग्र और विशद होती है, उसकी वाणी मोहक होती है, उसकी स्मरण शक्ति तीव्र होती है, उसका स्वभाव आनंदी और उत्साही होता है।"

डॉ० गोल एम० डी० का मत है—"ब्रह्मचर्य से आध्यात्मिक शक्ति मिलती है। शरीर में वीर्य के संचय से और व्याप्त हो जाने से दैवी शक्ति में अद्‌भुत वृद्धि होती है।"

ब्रह्मचर्य के विषय में भ्रांतियाँ : उसकी उपेक्षा

महापुरुषों और विद्वानों के उपरोक्त उद्‌गारों को पढ़कर स्वभावतः यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि जब ब्रह्मचर्य की महिमा इतनी बढ़ी-चढ़ी है, तो आजकल लोग उसके प्रति इतनी उपेक्षा की भावना क्यों रखते हैं? युवकों की बात छोड़ दीजिए, आजकल

दस-बारह साल के बालकों में दूषित भावनाएँ देखी जाती हैं। वे गंदी-अश्लील बातें सरेआम करते हैं और उनमें से कितने ही परोक्ष में ऐसी हरकतें करते हैं, पर उनके माता-पिता और समाज के अगुआ, कोई भी इस समस्या पर विचार नहीं करते और न उन बालकों को कुटेवों से बचाकर सच्चरित्रता की शिक्षा देना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। अधिकांश माता-पिता तो अपने लड़के को निर्दोष और भोला-भाला समझकर इस बात की आशंका ही नहीं करते कि जल्दी या देर में वह इस तरह की बुरी आदतों का शिकार हो जाएगा। इसलिए वे उसे इस संबंध में कुछ बतलाना या दुश्चरित्रता की हानियों से सावधान करना अनावश्यक समझते हैं।

बहुत-से अभिभावक ऐसा भी सोचते हैं कि बालकों से इस विषय पर चर्चा करना ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा करने से वे समय से पूर्व ही इन बातों को जान जाएँगे और फिर कुतूहलवश लुक-छिपकर विपरीत आचरण करने लगेंगे। परिणाम यह होता है कि वे तो संकोच या असावधानीवश इस बात को टालते रहते हैं और बालक अपने किसी नीच प्रकृति के संगी-साथी या नौकर आदि से इस प्रकार की वीर्यहानि करने वाली शिक्षा प्राप्त कर लेता है और शारीरिक पतन के मार्ग पर चलने लगता है। इसलिए आप इस भ्रम को सर्वथा त्याग दीजिए कि कोई अन्य व्यक्ति, शिक्षक, गुरु, उपदेशक आदि आपके बच्चे को इस विषय में उचित मार्गदर्शन करा देगा और वह हानिकारक दुष्कर्मों से बचा रहेगा।

प्राचीनकाल में इसी दृष्टि से अधिकांश बालक कुछ समझदार होते ही मानसिक शिक्षण के लिए कुशल पुरुषों के पास पढ़ने को भेज दिए जाते थे। वे उनकी साधारण पढ़ने-लिखने की शिक्षा के साथ चरित्र संबंधी शिक्षा भी देते थे और इस बात का ध्यान रखते थे कि लड़का वीर्य-रक्षा के नियमों का पालन करते हुए सदाचार के पथ पर चले। उसका शारीरिक और मानसिक विकास उचित रूप में हो सके और वह भावी जीवन में सुखी तथा सफल बन सके।

यह प्रणाली जब तक उपरोक्त रूप से प्रचलित रही, तब तक भारतीय नर-नारी ज्ञान, चरित्र, बुद्धि, पराक्रम, समृद्धि सभी क्षेत्रों में अग्रगामी रहे। उपरोक्त समय तक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने के प्रताप से उनके शरीर और मन में ऐसी सुदृढ़ता और शक्ति भर जाती थी कि वे अपने व्यक्तिगत, सामाजिक, नागरिक कर्त्तव्यों का प्रशंसनीय रूप में पालन कर सकते थे और देश तथा राष्ट्र के सम्मान को ऊँचा रखने में सहायक होते थे।

वर्तमान शिक्षा संस्थाओं की दुर्गति

इस समय बालकों की शिक्षा-दीक्षा के लिए जिन विदेशी ढंग की शिक्षा-संस्थाओं का विकास हुआ है, उनकी दशा बिलकुल विपरीत है। आरंभ में चाहे इनसे कुछ उपकार भी हुआ हो और देश को ऊँचा उठाने वाले थोड़े-बहुत व्यक्ति उसमें शिक्षा पाकर निकले हों, पर इस समय तो उनकी दशा सब तरह से शोचनीय ही दिखाई पड़ती है। यद्यपि उनकी संख्या बहुत बढ़ गई है और उनमें विद्यार्थियों की भीड़ भी बहुत अधिक रहने लगी है, पर उनकी उत्कृष्टता का दिन-पर-दिन ह्रास होता जाता है। अब ये स्कूल और कॉलेज, लड़कों के चरित्र-निर्माण के बजाय चरित्रहीनता का आधार बनते जा रहे हैं। लड़कों की उद्दंडता, शिक्षकों के प्रति उनका असम्मानजनक व्यवहार, पढ़ाई की अपेक्षा फैशन तथा शौकों में उनकी प्रवृत्ति आदि दोष तो प्रत्यक्ष दिखाई पड़ ही रहे हैं, वीर्य-रक्षा की भी उनमें बड़ी दुर्गति हो रही है। वहाँ का वायुमंडल ऐसा दूषित हो गया है कि जो सीधे और सुशील स्वभाव के बालक भी वहाँ जाते हैं, वे अन्य लड़कों की संगति में पड़कर, उनका उदाहरण देखकर थोड़े ही दिन में वैसे बन जाते है। जो थोड़े-से बालक घरेलू परिस्थितियोंवश और स्वाभाविक रूप से सदाचारी रहना भी चाहते हैं, उनको बड़ी आयु के दुष्ट लड़के बुरी तरह छेड़ते तथा तंग करते हैं, जिससे वे पूरी तरह नहीं, तो कुछ अंशों में चरित्र से गिर ही जाते हैं।

इन शिक्षा-संस्थाओं के शिक्षक और मास्टर भी अब बहुत निम्न स्तर के होने लगे हैं। 'शिक्षा वृद्धि' के नाम पर इस समय जो नए स्कूलों की भरमार हो रही है, उसके कारण ज्यादातर अधकचरे युवकों को ही शिक्षा कार्य के लिए नियुक्त कर दिया जाता है। वे स्वयं ही दो-चार वर्ष पहले इन्हीं शिक्षा संस्थाओं के विद्यार्थी थे और उनमें वे सब दुर्गुण अथवा त्रुटियाँ मौजूद रहती हैं, जिनकी शिकायत इन स्कूलों के संबंध में की जाती है। कुछ इने-गिने प्रसिद्ध और पुराने विश्वविद्यालयों और कॉलेजों को छोड़ दिया जाए, तो इस समय सामान्य स्कूलों के शिक्षक स्वयं सच्चरित्रता, नैतिकता, सदाशयता के गुणों से अनजान होते हैं। उनको कभी इन गुणों की शिक्षा प्राप्त करने या अभ्यास करने का अवसर ही नहीं मिला, अत: वे इनके महत्त्व और शिक्षण-विधि को समझ भी कैसे सकते हैं ? इसलिए वे लड़कों के चरित्र और सद्‌गुणों पर न तो ध्यान दे सकते हैं और न उतनी योग्यता रखते हैं। अनेक शिक्षक तो स्वयं चरित्रहीनता के दोषी पाए गए हैं और उनके संसर्ग से लड़कों के बिगड़ जाने की शिकायतें प्राप्त होती रहती हैं।

यह दशा वास्तव में बड़ी भयजनक है। जब रक्षक ही भक्षक बन जाए तो सुधार और उन्नति की आशा ही कैसे की जा सकती है ? माँ-बाप स्वयं तो प्राय: इन विषयों से अनजान होते हैं और उनको अपने अन्य-जीवन निर्वाह संबंधी कार्यों से इतना अवकाश भी नहीं मिलता, जिससे स्वयं बालकों की ठीक-ठीक देख-रेख उनको सुमार्ग पर चलने की व्यवस्था कर सकें। साथ ही अधिकांश घरों में बालकों के प्रति जिस प्रकार का गलत तरीके का लाड़-प्यार रखा जाता है, उसके कारण वे स्वयं बालकों पर उचित अनुशासन रखने में भी समर्थ नहीं होते। उनको निरुपाय होकर अपने बालकों को इन्हीं स्कूलों के भरोसे छोड़ना पड़ता है।

घरों की असंतोषजनक व्यवस्था

इन परिस्थितियों में बालकों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा मिलने और किशोरावस्था में प्रयत्नपूर्वक वीर्य-रक्षा कर सकने की संभावना ही कहाँ रहती है ? फिर हमारे घरों का वातावरण भी इसके प्रतिकूल ही होता है। अधिकांश माँ-बाप और अन्य वयस्क लोग छोटे बच्चों को अनजान समझकर उनके सामने या समीप रहते ही दांपत्य-जीवन संबंधी वार्त्तालाप या व्यवहार किया करते हैं। गरीब श्रेणी के लोगों के तो घर भी इतने छोटे रहते हैं कि उनमें बालकों के पृथक रह सकने की गुंजाइश ही नहीं रहती। एक-दो छोटे कमरों में ही, सबको रहना-सहना और जीवनयापन के सब काम करने पड़ते हैं।

इस अवस्था में बालकों का स्वस्थ मनोविकास असंभव हो जाता है। एक तरफ तो अभिभावकगण संकोच अथवा सामर्थ्य के अभाव से उनको सच्चरित्रता और ब्रह्मचर्य की शिक्षा स्वयं नहीं दे सकते और दूसरे उनको बहुत छोटी आयु से ही काम-विकार संबंधी बातें सुनने और देखने का मौका मिलता रहता है। इससे वे चार-पाँच वर्ष की छोटी आयु से स्त्री-पुरुषों के गुप्त-अंगों के विषय में जान जाते हैं और चर्चा भी करने लगते हैं। देखने में तो यह आता है कि घर के बड़े लोग छोटे बच्चों के मुँह से अश्लील शब्दों को सुनकर हँसते रहते हैं और कितने ही तो उनको छेड़-छाड़कर अपना मनोविनोद करते हैं। जब आगे चलकर इसका परिणाम बुरा निकलता है और लड़का कुमार्गगामी बन जाता है, तब उनको गलती का अनुभव होता है।

घरों का अन्य रहन-सहन, खान-पान तथा व्यसनों का अभ्यास भी ऐसा होता है, जिसमें रहकर ब्रह्मचर्य की संभावना मिट जाती है। भारतीय माँ-बापों में शायद ही एक-दो ऐसे होते हों, जो बालकों के विशेष खान-पान का ध्यान रखते हों। नहीं तो सर्वत्र जैसा मिर्च-मसालेदार, उत्तेजक, गरिष्ठ, अप्राकृतिक भोजन स्वयं किया जाता है वैसा ही बच्चों के लिए भी दे दिया जाता है। इतना ही क्यों घर के

वातावरण से बहुत छोटी अवस्था में ही बालक बीड़ी, सिगरेट, भाँग, शराब आदि जैसे हानिकारक पदार्थों का व्यवहार भी सीख जाते हैं। जब घर के सब लोग इनको काम में लाते हों तो बालकों पर नियंत्रण रख सकना कठिन हो जाता है। आजकल छह-सात वर्ष के बालक भी बीड़ी पीते देखे जाते हैं, यह उनके घरों के दूषित वातावरण का ही परिणाम है। इतना ही क्यों जिन घरों में या जातियों में हुक्का, भंग, मदिरा आदि का खुले तौर पर प्रचार है, वे स्वयं ही अपने बालकों को आरंभिक अवस्था से थोड़ा-थोड़ा करके इनकी आदत डालते जाते हैं, जिससे बड़े होने पर उनको पूरी तरह से ये व्यसन लग जाते हैं।

ये सब उत्तेजक और नशे के पदार्थ ब्रह्मचर्य अथवा वीर्य-रक्षा के विरोधी हैं। बड़ी आयु में भी इनके कारण काम-विकार पैदा होता है और वीर्य दूषित होता है। बालकपन में इनका प्रयोग करने से तो जड़ पर ही कुठाराघात होता है और ऐसे लड़के दस-पंद्रह वर्ष की आयु में ही किसी-न-किसी तरह वीर्यपात करने लग जाते हैं। जिस तत्त्व को शरीर का राजा कहा जाता है और बल, ओज, तेज, साहस, उत्साह आदि सब जिससे स्थिर रहते हैं, उसको नष्ट करके ये आगामी जीवन में सुख-शांति और सफलता किस प्रकार पा सकते हैं? ऐसे लोग बड़े होकर निश्चय ही दुराचारी, दुर्गुणी, शठ, लंपट बनकर अपना जीवन नष्ट करते हैं और जिस समाज में रहते हैं, उसे भी तरह-तरह के कुकर्मों द्वारा नीचे गिराते हैं।

सिनेमा की सत्यानाशी हवा

ब्रह्मचर्य-नाश की दृष्टि से इस समय जो सबसे बड़ी व्याधि पैदा हो गई है, वह सिनेमा की है। यद्यपि इसका विस्तार हुए तीस-पैंतीस वर्ष से अधिक नहीं हुए, पर इसी बीच यह हमारे जीवन पर छा गया है। जीवन के जिस क्षेत्र में देखिए इसका कुप्रभाव दृष्टिगोचर होता है। युवकों के चरित्र तथा स्वास्थ्य को तो यह बुरी तरह चौपट कर रहा है। मनोरंजन के नाम पर स्त्रियों

के अर्द्धनग्न अंगों का प्रदर्शन करके, अश्लीलतापूर्ण गाने और नाच दिखाकर विद्यार्थियों तथा नई आयु के युवक-युवतियों में जिन वासनाओं और कुप्रवृत्तियों को भड़काया जाता है, उससे उनका नैतिक स्तर चरमरा जाता है। इससे उनमें विषय-भोग की इच्छा जाग्रत हो जाती है और उसकी पूर्ति के लिए वे उन्हीं अनुचित उपायों का अवलंबन करने लगते हैं, जिनकी शिक्षा सिनेमाघरों में मिलती है।

इस समय तो दशा यहाँ तक बिगड़ गई है कि सामान्य घरों के तीन-चार वर्ष के बच्चे अपनी तोतली वाणी से सिनेमा के 'संगम होगा या नहीं' जैसे मशहूर गंदे गानों को अलापते नजर आते हैं और माँ-बाप भी अपनी संतान की 'प्रतिभा' को देखकर बड़े प्रसन्न होते हैं। स्कूलों के कविता पाठ में आठ-दस वर्ष के बालक बड़ी लय के साथ 'मेरा महबूब आया है' जैसे निकृष्ट गीतों को सुनाते हैं और 'मास्टर साहब' भी उनको सुनकर खुश होते रहते हें। इस दुरावस्था का प्रभाव ब्रह्मचर्य के लिए कैसा घातक होता है, इस संबंध में एक विद्वान का यह कथन ठीक ही है—

"सबसे बड़ा विष तो सिनेमाघरों में बोया जाता है। यह मनोविनोद नहीं है, चरित्र के पतन और ब्रह्मचर्य के नाश का खुला द्वार है। छात्रावास में सिनेमा के अनैतिक दृश्यों का बहुत व्यापक और घातक प्रभाव होता है। युवक-युवतियों के मन चंचल हो जाने से वीर्य अपने स्थान से चलित हो जाता है। आजकल के नवयुवकों में से जो ८० प्रतिशत वीर्य-विकार से पीड़ित हैं, उसका एक बड़ा कारण सिनेमा भी है।"

अश्लील साहित्य और चित्र आदि

हमारे चारित्रिक पतन के कारणों में अश्लील साहित्य का भी हाथ है। इस व्यापक युग में 'साहित्य' भी धन कमाने का साधन मान लिया गया है और नीच प्रवृत्तियों के अनेक लेखक उसकी गरिमा को बिलकुल भुला बैठे हैं। इस सयम लेखकों की ऐसी श्रेणी

पैदा हो गई है, जो यौन-असदाचार तथा कामुकता की बातों का यथातथ्य वर्णन करने में ही अपनी विशेषता समझती है।

कुछ समय पहले ऐसे अश्लील उपन्यासों और कहानी पत्रिकाओं की बाढ़ आ गई थी और ये गंदे लेखक एक-दूसरे से आगे बढ़कर अपने 'जौहर' दिखलाने लगे थे। उसी बहाव में एक कहानी-पत्रिका के प्रथमांक में ये शब्द पढ़ने में आए थे कि "आप शृंगार, प्रेम, कामोपभोग की बातें पढ़ना चाहते हैं, तो हम वह भी आपको पर्याप्त मात्रा में देंगे।" ऐसे लेखक स्वयं वेश्यागमन आदि दुराचारों में लिप्त होते थे और उन्हीं अनुभवों को कलम द्वारा प्रकट करके अन्य युवक-युवतियों को विपथगामी बनाने का कार्य करते थे। चूँकि इस प्रकार का साहित्य सर्वथा निस्सार होता था, इसलिए कुछ समय बीतने पर उनका प्रभाव बहुत कुछ नष्ट हो गया, तो भी बाजार में ऐसे साहित्य का अभाव नहीं है और नीची श्रेणी के तथा बाजारी पाठक मनोरंजन के लिए उसी को पसंद करते हैं।

इस प्रकार की पुस्तकों तथा पत्रिकाओं का प्रभाव नई उम्र के लड़कों और युवकों के लिए बहुत घातक होता है। ऐसे वर्णन प्राय: कामोद्दीपक होते हैं और उनसे संभोग की इच्छा उत्पन्न होती है। गंदा साहित्य अवश्य ही पाठकों के मन में गंदगी पैदा करता है और वे विभिन्न मार्गों से वीर्य-नाश में प्रवृत्त हो जाते हैं। यदि उनको अपने विचारों को व्यावहारिक रूप में परिणत करने की सुविधा नहीं मिलती तो भी वे मानसिक दुराचार में प्रवृत्त होते हैं और इसके परिणामस्वरूप प्रमेह, स्वप्नदोष आदि जैसे वीर्य संबंधी रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं।

अश्लील चित्रों का प्रचार भी आजकल बढ़ रहा है। बहुत बड़े नगरों में तो गुप्त पुस्तक विक्रेता सड़कों पर नंगे चित्रों की पुस्तकें बेचने लग जाते हैं। कितने ही नगरों में भले और प्रामाणिक समझे जाने वाले प्रकाशक ऐसी गंदी तस्वीरों की किताबें गुप्त रूप से छापते और बेचते पकड़े गए हैं। बहुत-से युवक जिन्होंने आरंभ से

ही वीर्य-नाश करके अपने को खोखला बना लिया है और वीर्य के निर्बल पड़ जाने से अपने दांपत्य संबध में भी असमर्थ हो गए हैं, ऐसे कामोपभोग के चित्रों से उत्तेजना प्राप्त करना चाहते हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि वे ऐसी योजनाओं में कहाँ तक सफल होते हैं, पर इस भ्रम के कारण ऐसे गंदे चित्रों की पुस्तकें काफी बिक जाती हैं। यही कारण है कि अनेक बार पकड़ा-धकड़ी होने और दंड दिए जाने पर भी ऐसा साहित्य बंद नहीं हो पाता और उससे अनेक अनुभवहीन व्यक्तियों का जीवन दूषित होता रहता है।

इस दृष्टि से सिनेमा-पत्रिकाओं और पोस्टरों के अनेक चित्र भी आपत्तिज़नक और हानिकारक होते हैं। ये अर्थ पिशाच 'निर्माता' नीति-अनीति का ख्याल छोड़कर केवल इस बात की चेष्टा में लगे रहते हैं कि लोग अधिक-से-अधिक उनकी फिल्मों की ओर आकर्षित हों और उन्हें भरपूर कमाई करने का मौका मिले, पर इससे जनता के चरित्र की कितनी हानि होती और समाज में दोष-दुर्गुणों की कितनी वृद्धि होती है, इसकी चिंता वे कभी नहीं करते।

ब्रह्मचर्य रक्षा कैसे करें ?

इस प्रकार ब्रह्मचर्य की भावना के घटते जाने और वीर्य-नाश की प्रवृत्ति के जोर पकड़ते जाने के अनेक कारण हैं, पर सबसे बड़ा कारण समाज की परिस्थिति ही है। मनुष्य चाहे जैसा उच्छृंखल अथवा सदाचार रहित हो उसे समाज का ध्यान रखना ही पड़ता है। यदि समाज यौन-सदाचार को महत्त्व देने वाला हो और चरित्रहीनता को हेय दृष्टि से देखता हो, तो बहुत कम व्यक्ति कुमार्ग पर जाने का साहस करेंगे। उस अवस्था में सदाचार-विमुख व्यक्ति सामाजिक अपमान और बहिष्कार से बचने के लिए राजी से नहीं तो लाचारी से ही अनैतिक कार्यों की ओर एकाएक अग्रसर न होंगे। यदि जनता का सदाचारी भाग प्रभावशील हो तो व्यभिचार के इच्छुक भी उस मार्ग पर चलने से रुक सकेंगे। यदि कोई विवेकहीन वैसा कर्म

करेगा भी तो वह उसी प्रकार घृणित और नीच समझा जाएगा, जिस निगाह से हम वेश्या आदि को देखते हैं। इस तथ्य का विवेचन करते हुए एक विचारक ने लिखा है—

"यह बात समझने की जरूरत है कि समाज का गृहस्थ-जीवन जितना पवित्र होगा, उतनी ही उस समाज में ब्रह्मचारियों की संख्या अधिक मिल सकेगी। जिस देश में बहुसंख्यक लोगों का गृहस्थ जीवन अपवित्र होगा, वहाँ बहुत-से शुद्ध ब्रह्मचारी कभी नहीं हो सकते।"

महात्मा गांधी ने चार पुत्र हो जाने के पश्चात बड़ी आयु में ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया था और उसे स्वानुभव तथा अभ्यास के बल से इतनी परिपूर्ण स्थिति तक पहुँचा दिया था कि उनका जीवन करोड़ों के लिए आदर्श बन गया। उन्होंने अपने 'ब्रह्मचर्य के अनुभव' विस्तारपूर्वक लिखे हैं और उन उपायों को भी बतलाया है, जिनसे उनको इस कठिन कार्य में सफलता मिल सकी। नीचे उनके लेख का कुछ अंश दिया जाता है—

ब्रह्मचर्य और स्वादेंद्रिय

"ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए स्वादेंद्रिय को वश में करना चाहिए। मैंने खुद अनुभव करके देखा है कि यदि स्वाद को जीत लें, तो फिर ब्रह्मचर्य अत्यंत सुगम हो जाता है। इस कारण मेरे भोजन प्रयोग केवल अन्नाहार की दृष्टि से नहीं, पर ब्रह्मचर्य की दृष्टि से होने लगे थे। मुझे अनुभव हुआ कि भोजन कम, सादा, बिना मिर्च-मसाले का करना चाहिए। ब्रह्मचारी का सर्वोत्तम भोजन तो पेड़ के पके फल हैं। फलाहार के दिनों में मेरे लिए ब्रह्मचर्य सहज था, पर जब मैं दूधाहार करने लगा तो वह कष्टसाध्य हो गया, पर दूध जैसा शरीर की रगों-नसों को मजबूत बनाने वाला और उतनी आसानी से पचने-हजम होने वाला खाद्य दूसरा नहीं है। इसलिए मैं किसी से उसके त्याग के लिए नहीं कह सकता।"

ब्रह्मचर्य और उपवास

"इंद्रियाँ ऐसी बलवान हैं कि चारों ओर से, ऊपर-नीचे, दसों दिशाओं से जब उन पर घेरा डाला जाता है, तभी कब्जे में रहती हैं। सभी लोग इस बात को जानते हैं कि आहार के बिना वे अपना काम नहीं कर सकतीं। इसलिए इंद्रिय-दमन हेतु इच्छापूर्वक किए गए उपवासों से ब्रह्मचर्य-पालन में बड़ी सहायता मिलती है। कितने ही लोग उपवास करते हुए भी सफल नहीं होते। कारण यह होता है कि वे उपवास से ही सब काम पूरा हो जाने की आशा करते हैं। वे बाहरी तौर पर उपवास करते हैं, पर मन में छप्पन भोगों का ध्यान लगाते रहते हैं। उपवास से वास्तविक लाभ वहीं होता है, जहाँ मन भी देह-दमन में साथ देता है।"

ब्रह्मचर्य और मनोविकार

"ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले बहुतेरे इसलिए विफल होते हैं, क्योंकि वे आहार-विहार तथा अवलोकन इत्यादि में 'अब्रह्मचारी' की तरह बरताव करते हैं। संयमी तथा स्वच्छंद और भोगी तथा त्यागी जीवन में भेद अवश्य होना चाहिए। साम्य तो सिर्फ ऊपर ही रहता है। भेद स्पष्ट रूप में दिखाई देना चाहिए। आँख से काम तो दोनों तरह के व्यक्ति लेते हैं, परंतु ब्रह्मचारी देव-दर्शन करता है, भोगी नाटक-सिनेमा में लीन रहता है। कान का उपयोग दोनों करते हैं, परंतु एक ईश्वर—भजन सुनता है और दूसरा विलासमय गीतों के सुनने में आनंद मानता है। भोजन दोनों करते हैं, परंतु एक शरीर रूपी तीर्थ-क्षेत्र की रक्षा मात्र के लिए पेट में अन्न डाल लेता है और दूसरा स्वाद के लिए देह में अनेक चीजों को भरकर उसे दुर्गंधित बनाता है।"

"ब्रह्मचर्य पालन के लिए मन, वचन, कर्म से समस्त इंद्रियों के संयम के लिए पूर्वोक्त त्यागों की आवश्यकता है। जब तक अपने विचारों पर इतना कब्जा न हो जाए कि अपनी इच्छा के बिना

एक भी विचार न आने पाए, तब तक पूर्ण ब्रह्मचर्य-पालन की आशा नहीं करनी चाहिए। जितने भी संसारी विचार हैं, वे सब एक तरह के विकार हैं। उनको वश में करने का अर्थ है—मन को वश में करना और मन को वश में करना वायु को वश में करने से भी कठिन है। यद्यपि इसमें बड़ी कठिनाइयाँ हैं, पर यह न मान लेना चाहिए कि यह असाध्य है। ब्रह्मचर्य तो परम अर्थ है और परम अर्थ के लिए परम-पुरुषार्थ की आवश्यकता हो तो इसमें कौन आश्चर्य है।''

ईश्वरपरायणता और आस्तिक भाव

अंत में सबसे बड़ा उपाय है—ईश्वरपरायणता और ईश्वर की कृपा पर अटल विश्वास रखना। यदि हम मन से ईश्वर का चिंतन करें, वाणी से उसकी चर्चा करें, शारीरिक कर्मों में भी यही ईश्वर सेवा का भाव रखें, तो ब्रह्मचर्य-पालन बहुत सरल हो जाएगा। उस स्थिति में काम-विकार की बात सोचने और उसकी चर्चा करने का अवसर नहीं मिलेगा। महात्मा गांधी भी अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे। उन्होंने लिखा है, ''जब मैं अफ्रीका से लौटकर पुनः भारत में आया तो मैंने देखा कि ब्रह्मचर्य केवल प्रयत्न साध्य नहीं है। अब तक मैं कहता था कि फलाहार से ब्रह्मचर्य का पूर्णतः पालन हो जाएगा, तब तक वस्तुतः मैं एक प्रकार के विदेशी भाव में था। भारत आकर मुझे अनुभव हुआ कि सच्चे आत्मार्थी ब्रह्मचारी का अंतिम साधन तो राम नाम और राम कृपा ही है।''

भोजन का शुद्ध और सात्त्विक होना

शरीर के निर्माण और विकास का मुख्य आधार हमारा आहार होता है। शरीर ही नहीं, मन पर भी इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अशुद्ध अथवा अनीति द्वारा उपार्जित आहार को करता हुआ कोई मनुष्य संयमी रह सके यह संभव नहीं। जो लोग अधिक मसालेदार चटपटा अथवा गरिष्ठ भोजन करते हैं, वे प्रायः कब्ज के

शिकार हो जाते हैं। कब्ज हो जाने पर मल को बाहर निकालने में अधिक जोर लगाना पड़ता है। लगातार ऐसा करते रहने से इसका कुप्रभाव जननेंद्रिय और वीर्यवाहिनी नसों पर भी पड़ता है और पेशाब के साथ वीर्य निकलना आरंभ हो जाता है। इस प्रकार वीर्यनाश होना स्वास्थ्य के लिए असंदिग्ध रूप से हानिकारक होता है।

नशों से बचकर रहिए। सब प्रकार के नशे भी वीर्य-रक्षा के महान शत्रु हैं। शराब, ताड़ी, अफीम, भाँग आदि प्रत्येक मादक पदार्थ मनुष्य के मन को उत्तेजित करता है और उसे दुराचार की ओर प्रेरित करता है। सबसे खोटा और सामान्य समझा जाने वाला 'धूम्रपान' ही वीर्य को ऐसा पतला और निर्बल कर देता है कि कुछ वर्ष तक उसका आदी होने के पश्चात संयम और वीर्य-रक्षा का उद्देश्य असंभव हो जाता है। तंबाकू में एक प्रकार का घातक विष 'निकोटिन' पाया जाता है, जो यदि शुद्ध अवस्था में किसी नए व्यक्ति को दे दिया जाए, तो वह उसी समय मर सकता है। यद्यपि धीरे-धीरे आदत डाल लेने से उसका कुप्रभाव शीघ्र ही नहीं जान पड़ता, पर वह स्वास्थ्य को निरंतर हानि पहुँचाता रहता है और एक दिन वह मनुष्य को निर्बल तथा निस्तेज ही नहीं बना डालता, वरन तरह-तरह के भयंकर रोग, जैसे—कैंसर आदि उत्पन्न करके उसकी जीवन लीला को समय से पूर्व ही समाप्त कर डालता है।

आलस्य, प्रमाद, शृंगारप्रियता, कृत्रिम जीवन, दुराचारी लोगों की संगति और उनकी कामुकता तथा वासनापूर्ण बातों में रस लेना अनियमित दिनचर्या आदि अन्य अनेक बातें भी वीर्य-रक्षा की दृष्टि से आपत्तिजनक हैं। इसके कारण मनुष्य के मन को कुपथ में जाने का अवसर मिल जाता है और वह क्रमशः दूषित जीवन को अपना लेता है। यही कारण है कि प्राचीन धर्म-शास्त्रकारों ने ब्रह्मचर्य आश्रम के लिए ऐसे कठिन नियम बनाए थे कि वे स्त्रियों के संसर्ग

से ही न बचें, वरन् किसी स्त्री के प्रति दूषित विचार भी मन में न लाएँ। इसमें संदेह नहीं कि जो व्यक्ति स्वस्थ, सदाचारी, पवित्र और सुखी जीवन व्यतीत करके इस मानव-जन्म को सार्थक करना चाहता है, उसे अपना आचार-विचार ऐसा शुद्ध और सात्त्विक रखना चाहिए कि अनुचित रीति से वीर्य-नाश जैसा प्रसंग उसके सम्मुख कभी उपस्थित ही न हो। ऐसा ही व्यक्ति अपना तथा अपने देश और समाज का उत्थान कर सकता है और किसी उच्च लक्ष्य को पूरा करके लोक और परलोक में सद्गति का अधिकारी बन सकता है।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा